# पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
# श्री समयसार गाथा १३
# तारीख १०-०२-१९८९, राजकोट पंच कल्याणक
# प्रवचन नंबर ११५

यह श्री समयसार जी परमागम शास्त्र है। समयसार का अर्थ - तीनोंकाल आत्मा शुद्ध है। तीनोंकाल शुद्ध है? कि हाँ! तीनोंकाल आत्मा शुद्ध ही रहता है। कथंचित् आत्मा शुद्ध रहता है और कथंचित् आत्मा अशुद्ध हो जाता है, ऐसा आत्मा का स्वभाव नहीं है।

मुमुक्षु: अनेकांत है न प्रभु!

पू. लालचंदभाई: वह शुद्ध है; है, है और है। रहता है। शुद्ध रहता है और अशुद्ध होता नहीं है, इसका नाम अस्ति-नास्ति अनेकांत है। आहाहा! जिसकी दृष्टि केवल एकांत पदार्थ पर है (उसको कहते हैं कि) केवल पदार्थ की सिद्धि के लिए प्रमाणज्ञान है, मगर साध्य की सिद्धि के लिए (तो) केवल शुद्धनय है। आहाहा! प्रमाणज्ञान का विषय पूज्य नहीं है, यानि उपादेय नहीं है और निश्चयनय का विषय पूज्य है। प्रमाण तक तो अनंतबार द्रव्यलिंगी मुनि होकर आ गया। आहाहा! परंतु प्रमाण में से उसने निश्चयनय का विषय निकाला नहीं। आहाहा! इसलिए चारगति का दुःख आता है।

कार्तिकेयानुप्रेक्षा नाम का एक शास्त्र है। कार्तिक स्वामी हो गए। बहुत जूने-पुराने, बहुत साल पहले की बात है। उन्होंने फरमाया है कि प्रमाणज्ञान में से जो कोई जीव निश्चयनय निकालता है वो जिनवचन में कुशल है। अपने को (तो) अस्ति से बात करना। नहीं निकालता है उसकी क्या स्थिति है (उसका) अपने को काम (नहीं है)।

क्या कहा? वस्तु द्रव्य-पर्याय स्वरूप है, **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्** (तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५, सूत्र ३०) है, **गुणपर्ययवत् द्रव्यं** (तत्त्वार्थसूत्र , अध्याय ५, सूत्र ३८) है। नहीं है ऐसा (नहीं), मगर उसमें पदार्थ की सिद्धि होती है। पदार्थ की सिद्धि तक आ जाए तो पंडित तो हो जाता है मगर ज्ञानी होता नहीं (है)। पूर्णाहुति का दिन है न आज। आहाहा! निर्विघ्न अपना ये कार्य आज समाप्त हो रहा है।

बहुत उत्साह है। आहाहा! और ये राजकोट के जो कार्यकर्ता हैं उन्होंने बहुत अच्छा काम किया है। आहाहा! तो भगवान की प्रतिष्ठा आज है। हें? तो ये भगवान की प्रतिष्ठा इधर (अंदर में) होने का ही ये काल है। आहाहा! वो निमित्तरूप हैं, पंचपरमेष्ठी पूजनीक हैं। आहाहा!

मगर प्रमाण में पदार्थ की सिद्धि की मगर प्रयोजन की सिद्धि प्रमाण से होती नहीं है। प्रमाण के विषय में ही छुपा है आत्मा। और जब शुद्धनय की आँख खोलेगा तो वो दिखाई देगा। पर्याय के चक्षु से आत्मा दिखाई देगा नहीं। वो द्रव्यार्थिकनय, एक द्रव्य सामान्य को ग्रहण करनेवाला, अंतर्मुख (होने पर) अतीन्द्रियज्ञान नया प्रगट होता है, उसमें भगवान आत्मा का दर्शन हो जाता है। आहाहा! शुद्धनय का विषय है शुद्धात्मा। प्रमाण का विषय तो है ही, (अब) इसके आगे की बात। जो प्रमाण से बाहर है उसकी बात तो... दिल्ली बहुत दूर है। रमेशभाई बोलते हैं - दिल्ली बहुत दूर है। आहाहा!

प्रमाण से बाहर क्या? ये सारा जगत है। जगत के साथ लेन-देन अपने को है नहीं। अनंत जीव हैं, अनंत पुद्गल परमाणु हैं, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय। आहाहा! एक आकाश, असंख्यात् कालाणु। छहद्रव्य हैं, सर्वज्ञ भगवान ने कहा है (कि) हैं। नहीं है, ऐसा नहीं है।

तो अपने को तो परपदार्थ के साथ कोई संबंध नहीं है। जब प्रमाण की बात आती है तो अर्चना मेरे को याद आ जाती है। क्या करें? आहाहा! 'प्रमाण से बाहर जाना नहीं और प्रमाण में अटकना नहीं'-वह सूत्र है। ऐसी बात सामान्य नहीं है और उसको झेलनेवाले (पकड़ने वाले) भी विरले होते हैं। ऐसी बात नहीं है। आहाहा! तो प्रमाण तक तो अनंतबार जीव द्रव्यलिंगी मुनि होकर आ गया। सर्वज्ञ भगवान ने छहद्रव्य कहे हैं। द्रव्य-गुण-पर्याय है, है। **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्** है - वहाँ तक तो आया।

अभी रमेशभाई का प्रश्न था कि आत्मा शुद्ध ही है, तो उसमें कोई अनेकांत होना चाहिए। कि हाँ! अनेकांत है। शुद्ध है और अशुद्ध नहीं है, हुआ भी नहीं और होगा भी नहीं। तू राह देख, राह देख। वाट जोया कर, गुजराती में क्या? राह देख कि आत्मा अशुद्ध है और अशुद्ध रहेगा, ये राह देखा कर (मगर) कभी होगा नहीं। तेरी बुद्धि बिगड़ जाएगी मगर आत्मा तीनकाल में (भी) एक समय के लिए अशुद्ध होता नहीं। होगा भी नहीं। हुआ नहीं, है नहीं और होगा भी नहीं - उसमें प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना हो गई। आहाहा! भूतकाल में भी शुद्ध पूर्णानंद का नाथ है, वर्तमान में शुद्ध है और भावी अनंतकाल रहेगा आत्मा, नित्य है। प्रदीपजी! आत्मा नित्य ध्रुव है।

तो जो कोई प्रमाणज्ञान के विषय में से निश्चयनय का विषय निकालता है, वो जिनवचन में कुशल है। आहाहा! उसका काम हो जाता है। अनंतकाल से ऐसी परिपाटी चलती है कि भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र होता है। त्रिकाल नियम है, वो नियम फिरनेवाला नहीं है। वो बात १३ नंबर की गाथा में आचार्य भगवान अपने को समझाते हैं, अपने को उपदेश देते हैं, बोध देते हैं। हे भव्यात्माओं! आचार्य भगवान फरमाते हैं कि 'हमको अंतर्दृष्टि हो गई है'। आहाहा! और हमारे गुरु की कृपा हमारे ऊपर थी। हें? मेरे से हुआ - ऐसा वहाँ नहीं है; गुरु की कृपा से हुआ। आहाहा! उनके अनुग्रह से हमको शुद्धात्मा का उपदेश मिला और उनकी कृपा से शुद्धात्मा का अनुभव हमने कर लिया, वो करने के बाद ये शास्त्र हम लिखते हैं।

तो **अन्तर्दृष्टिसे देखा जाये तो:-** वह बात कल, शुरू वहाँ से हुई थी। **अन्तर्दृष्टिसे देखा जाये तो:- ज्ञायकभाव जीव है**। जीव, जीवत्व शक्ति से जीता है आत्मा, चैतन्यशक्ति से। दस प्राण से जीता नहीं है। आहाहा! वो व्यवहार है - जानने के लिए, मानने के लिए नहीं (है)। आहाहा! **ज्ञायकभाव जीव है और जीवके विकारका हेतु**, विशेष जो कार्य परिणाम में होता है, नवतत्त्व। नवतत्त्व क्रियावान है और आत्मा निष्क्रिय है। आहाहा! आत्मा निष्क्रिय है और उसका जो परिणाम समय-समय पर होता है, वो सक्रिय रहता है। तो जीव का जो परिणाम, विकार यानि विशेष कार्य पर्याय में, परिणाम में, अवस्था में, हालत में जो होता है, उसका हेतु कौन है? उसका निमित्तकारण कौन है? उपादानकारण तो पर्याय का पर्याय में ही है। मगर परिणाम उत्पन्न होता है समय-समय पर; आत्मा ध्रुव रहता है, नित्य रहता है और अनित्य परिणाम प्रगट होता है। तो उसके जो परिणाम (जो) ये पर्याय प्रगट होती है, उसका हेतु

यानि कारण, कारण यानि निमित्त कौन है? आत्मा है कि अजीव है? जीव है कि अजीव है? कि जीव हेतु है नहीं।

आत्मा में परिणाम उत्पन्न हो पर्याय में, उसका हेतु, निमित्त आत्मा नहीं है। आत्मा को निमित्त मत देख। इसमें (जो) लिखा है उसका अर्थ चलता है कि **जीवके विकारका हेतु**, विशेष कार्य का हेतु **अजीव है;** तीनोंकाल। आज की बात नहीं है। जब-जब परिणाम उत्पन्न होता है; पुण्य-पाप का परिणाम उत्पन्न होता है, आस्रव का परिणाम उत्पन्न होता है, आस्रव के निरोधपूर्वक संवर - शुद्धात्मा की अनुभूति होती है, और अनुभव की - शुद्धि की वृद्धि होती है - निर्जरा और पूर्ण शुद्धि प्रगट होती है; ऐसे जो परिणाम प्रगट होता है, आता है और जाता है, आता है और जाता है और जाननेवाला जानता है। जाननेवाला कैसा जानता है? कि आता है और जाता है, उसको जानता है। आहाहा! जाननेवाले को जानते-जानते जो है इसको भी जानता है, और होता है उसको भी जानता है; मैं उसका कारण नहीं हूँ। तो कोई कारण तो होना चाहिए! तो कोई कारण तो ...

ये नवतत्त्व जो सापेक्ष हैं। हैं तो निरपेक्ष मगर सापेक्ष की सिद्धि करे तब अजीव-हेतु है। उसका हेतु, निमित्तकारण... आहाहा! उपादानकारण तो होने योग्य अपना परिणाम है, उपादानकारण है। निमित्तकारण - हेतु कौन है? अजीवतत्त्व निमित्त है, अजीव। **और पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष-ये जिनके लक्षण हैं** - सब में ले लेना, सब में हेतु अजीव है, मैं कारण नहीं हूँ।

आत्मा किसी का कार्य भी नहीं है और किसी का कारण भी नहीं है। मोक्ष का कारण आत्मा नहीं है। मोक्ष का कारण आत्मा है यहाँ तक तो अनंत बार आया मगर सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। क्या कहा? समाज में ऐसी सूक्ष्म बात चले? ये समाज भगवान आत्मा है और आत्मा की बात चलती है। और आत्मा को अनंतकाल से पर का - निमित्त का, कर्म का, राग का, पर्याय का - कारण मानते-मानते अनंतकाल बीता मगर सम्यग्दर्शन होता नहीं है। इसका कारण यह है कि (आत्मा) कारण नहीं होने पर भी कारण मान लिया (है, ये) जीवतत्त्व की भूल है। आहाहा! अकारण परमात्मा है। भगवान आत्मा अकर्ता परमात्मा है, अभोक्ता परमात्मा है और अकारण परमात्मा है। कारण मेरे में (है नहीं), परिणाम का कारण मैं नहीं हूँ। परिणाम का निश्चय कारण परिणाम में ही है और निमित्तकारण परपदार्थ है, अजीवतत्त्व है। आहाहा!

उसका **हेतु अजीव है;** ... **पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष-ये जिनके लक्षण है ऐसे केवल जीवके विकार हैं**, जीव का विशेष कार्य, विकार यानि विशेष कार्य। होता है; नहीं होता है, ऐसा (नहीं है)। आहाहा! एकांत से कूटस्थ और एकांत से अपरिणामी, ऐसा नहीं है। तो कथंचित् परिणामी और कथंचित् अपरिणामी। आहाहा! यह प्रमाण से है, नय से (नहीं है)। अपरिणामी हूँ और परिणामी नहीं हूँ। आहाहा!

मलाड में कही थी, मलाड में वो बात कही थी कि प्रमाण से कथन बहुत आता है मगर नय से कथन कम आता है जिनागम में भी। वह भी एक समयसार (में है)। तो पंडित जी को कहा कि यह बात, आत्मा ज्ञायक है और प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है; वो अनेकांत है। आहाहा! आत्मा अकर्ता है और कर्ता नहीं है; इस अस्ति-नास्ति अनेकांत में से सम्यक्एकांत की प्राप्ति हो जाती है और अनेकांत का

ज्ञान भी हो जाता है। ज्ञान होता है; नहीं होता है, ऐसा (नहीं है)। तो इधर क्या कहा? सूक्ष्म है यह बात (ऐसा) कहकर छोड़ना नहीं। आहाहा! छोड़ने जैसी बात नहीं है। ये तो ये विद्वान के लिए, विद्वान के लिए, पंडित के लिए, जयपुर के विद्यार्थियों के लिए (ये बात है); हम तो सामान्य हैं। सामान्य नहीं है तू! तू परमात्मा है अभी!

'मैं परमात्मा हूँ' - कल आया था न? दिव्यध्वनि छूटी थी और सूर्यकीर्ति होनेवाले हैं, उनकी दिव्यध्वनि छूटनेवाली है। 'मैं परमात्मा हूँ' यह वाणी छूटेगी। कोई माने कि न माने (मगर) ऐसा वस्तु का स्वरूप है। २४ तीर्थंकर भगवान ने कहा है कि मैं भी परमात्मा, तू भी परमात्मा, सब जीव परमात्मा हैं। पर्यायदृष्टि से देखने की आँख बंद कर दे। आहाहा! कि सर्वथा बंद करूँ? हाँ प्रभु! सर्वथा बंद कर दे। आहाहा! सर्वथा करने से क्या होगा, एकांत होगा? कि सम्यक्एकांत होगा। आहाहा!

प्रभु! यह आत्मा की बात, शुद्धनय का विषय - उसका प्रतिपादन विरल है। कहीं-कहीं (पर) है। आहाहा! शुद्धनय का पक्ष भी नहीं आया और शुद्धनय का, शुद्धात्मा का उपदेश भी विरल है। आत्मा तीनों काल शुद्ध है। रमेशभाई ने कहा (कि) 'कुछ उसमें अनेकांत तो करो, अनेकांत करो - अर्थात् कथंचित् शुद्ध और कथंचित् अशुद्ध?' ये नहीं है ऐसा; शुद्ध है और अशुद्ध नहीं है, वो अस्ति-नास्ति अनेकांत है। सुन तो सही! प्रमाण से तूने देखा है कथंचित् शुद्ध और अशुद्ध, वह प्रमाणज्ञान पदार्थ की सिद्धि करता है। शुद्धाशुद्ध पर्याय का पिंड द्रव्य है; वह प्रमाणज्ञान का विषय पदार्थ की सिद्धि करता है। शुद्ध हूँ और अशुद्ध नहीं हूँ, होगा भी नहीं। राह देख (लेकिन) आत्मा अशुद्ध होनेवाला (नहीं है)। तेरी बुद्धि बिगड़ जाएगी। आहाहा!

युगल जी साहब ने कहा था, आहाहा! एक जीव रह गया है (जो) सत्य का प्रतिपादन करता है। कि भैया! पर्याय में राग है, विकार है - तो-तो वो बात ठीक है; मगर मैं रागी हो गया। आहाहा! हुआ ही नहीं (है)। आहाहा! (ऐसा स्वीकार ले तो) तेरा काम हो जाएगा। परिणाम का यथार्थ ज्ञान करके वहाँ से हटकर मैं त्रिकाल शुद्ध हूँ। आहाहा! (परिणाम) गौण कर दे, उसका लक्ष छोड़ दे। हो तो हो भले, कौन ना बोलता है। परिणाम में सिद्ध पर्याय नहीं प्रगट हुई है। परिणाम में राग होने पर भी राग से भिन्न आत्मा का अनुभव हो सकता है क्योंकि राग परिणाम आत्मा में आया नहीं है - ऐसी बात है।

तो **ये विकारहेतु केवल अजीव हैं।** मैं कारण नहीं हूँ। मेरे को कारण मत कहो। पर का कारण तो मैं नहीं हूँ परंतु सम्यग्दर्शन प्राप्त हो उसका निमित्त मैं हूँ - वैसा तो है ही नहीं। मगर सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, मेरी दशा में वीतरागभाव (होता है) उसका कारण भी मैं नहीं हूँ। यह क्या बात है? अपूर्व बात है! द्रव्यदृष्टि हो जाए ऐसी बात है।

कि 'दूसरे (को) सम्यग्दर्शन होता है वो मेरे निमित्त से होता है, मेरे निमित्त से ज्ञान उसको होता है, मेरे निमित्त से ज्ञान होता है दूसरे को'। अच्छा! दूसरे के परिणमन में मैं कारण हूँ वो तो कर्ताबुद्धि है, वो तो कर्ताबुद्धि है। ऐसी वस्तु की स्थिति है ही नहीं। सब जीव स्वतंत्र हैं। कोई किसी के कारण से ज्ञानी-अज्ञानी होता (नहीं है)। वो बात तो दूर रहो- मेरे से दूसरे को सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाए वो बात तो स्वभाव में, स्वरूप में है ही नहीं। मगर हमारे शुद्धात्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है न, वो सम्यग्दर्शन प्रगट होने में मैं कारण हूँ, ऐसा है नहीं। आहाहा! होता है, निरपेक्ष पर्याय अपने सत्-

अहेतुक, उसके स्वकाल से सम्यग्दर्शन होता है। मगर निश्चय से भगवान आत्मा कारण नहीं है। जो कारण हो तो (सबको) होना चाहिए, कारण हो तो होना चाहिए। जो भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन का कारण हो तो भगवान आत्मा तो सबके पास है! है कि नहीं? जेठाभाई, नहीं है? कि अशुद्ध हो गया संसार में? आहाहा!

बाबूजी युगल जी: कार्य होना चाहिए।

पू. लालचंदभाई: कार्य होना चाहिए मगर कार्य तो होता (नहीं है)। और सम्यग्दर्शन प्रगट क्यों नहीं होता है? कि सम्यग्दर्शन का कारण मैं हूँ, ऐसा शल्य रह गया (है)। सूक्ष्म बात है! आहाहा! परिणाम का कारण परिणाम है, परिणाम का कारण मैं नहीं हूँ। निरपेक्ष - परिणाम भी निरपेक्ष और अपरिणामी भगवान आत्मा भी (निरपेक्ष)। परस्पर निरपेक्ष है, परस्पर ( निरपेक्ष है)। सापेक्ष के कथन का नाम व्यवहार है।

**नियमसे** ... **करने योग्य** है। बोलो! नियमसार (गाथा ३) में लिखा (कि) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का परिणाम **नियमसे** ... **करने योग्य** है। इसका अर्थ कि व्यवहार रत्नत्रय का परिणाम करने योग्य नहीं, इतना मर्यादित कथन है उसमें। आहाहा! कर्ताबुद्धि नहीं है उसमें स्थापनेवाले को।

**ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे, तहाँ समजवु तेह** (आत्मसिद्धि शास्त्र गाथा ८)

आहाहा! इस कथन की पद्धत्ति में आचार्य भगवान को क्या प्रयोजन सिद्ध करना है, यह बात का ख़्याल रखना और किस नय का कथन है, वो बात ख़्याल रखने में सारा आगम का सार इधर (अंतर मे) आ जायेगा।

आत्मा बंध-मोक्ष का कारण नहीं है। देखो! तेरह व्याख्यानों की एक पुस्तक गुरुदेव की बाहर पड़ी है, 'अध्यात्म प्रवचन रत्नत्रय' - (समयसार) ३२० गाथा, प्रवचनसार की ११४ गाथा, कलश-टीका कलश २७१। आहाहा! अमृत है। आहाहा! ये तो निश्चय की बात, ये निश्चय की बात - निकाल दो। अरे भैया! निश्चय की बात यानि यथार्थ है, व्यवहार की बात यानि अयथार्थ है। **व्यवहारनय दूसरे के भावों को दूसरे का कहता है** (समयसार गाथा ५६)। सम्यग्दर्शन का कारण आत्मा है, यह कौनसे नय का कथन है? व्यवहारनय का कथन है। अरे! वहाँ तक? हा!वो सूक्ष्म व्यवहार का शल्य यहाँ तक है (कि) मैं कारण हूँ। आहाहा! कारण-कार्य पर्याय का पर्याय में है, कर्ता-कर्म पर्याय का पर्याय में है क्योंकि पर्याय एक समय के लिए भी सत् है। आहाहा! द्रव्य सत्, गुण सत् और पर्याय सत् है। ऐसी बात है भैया!

तो कहते हैं, भगवान फरमाते हैं, **अन्तर्दृष्टिसे देखा जाये तो:-** आहाहा! कि **ये जिनके लक्षण हैं ऐसे केवल जीवके विकार हैं**। जीव है, ऐसा नहीं लिखा है; जीव का विकार यानि जीव का विशेष कार्य है। जीव का परिणाम है - ऐसा कहो मगर उसको जीव मत कहो। आहाहा! जीव तो जुदा और जुदा अंदर में रहता है, चैतन्य-गोला। आहाहा! पर्याय का स्पर्श उसमें आता नहीं है। द्रव्य को पर्याय स्पर्शती नहीं है और पर्याय को द्रव्य का स्पर्श नहीं है। ये बात, प्रमाण के मध्य में से निश्चयनय को निकालने की बात चलती है। प्रमाण से तो अनेकों बात होती हैं - अपना परिणाम अपने द्रव्य को

चूमता है, स्पर्शता है - ये प्रमाण का कथन है। आहाहा!

ये रतनलाल जी को तो बार-बार मैं कहता हूँ कि ये झंझट छोड़ दो, परंतु छोड़ते नहीं हैं। आहाहा! सत्ता कुछ काम में आनेवाली नहीं है। उनकी माँ जी भी ... कि वो माँ जी को भूलता नहीं है, माँ-साब को। श्रवणबेलगोला में कहा था। हम साथ में उनके बंगले में उतरे थे, शांतिभाई जवेरी (और मैं)।

बाबूजी युगल जी: तबीयत ठीक नहीं रहती है। खराब रहती है...

पू. लालचंदभाई: तबीयत भी ठीक नहीं रहती है। माँ को चिंता होती है कि ये छोड़ दे झंझट। आहाहा! माँ-साब ने कहा कि चार महीने एक जगह पर हम रहे मगर गुरुदेव की बात किसी के पास है नहीं। आहाहा! माँ-साब ने इतना अंतर पहचान लिया। वसंतभाई! Difference (अंतर)! आहाहा! वाणी-वाणी में भी फर्क है। किसकी वाणी से परिणति अंदर में जाती है और किसकी वाणी से परिणति अंदर में नहीं जाती है - वो तो सब अंदर से, इधर से सब प्रमाण होता है। बाहर से होता (नहीं है)।

तो कहते हैं, भगवान फरमाते हैं कि इस परिणाम का निमित्तकारण-हेतु अजीव है, मैं नहीं हूँ। **ऐसे यह नवतत्त्व, जीवद्रव्यके स्वभावको छोड़कर**, देखो! एक कोहिनूर का हीरा आया, कोहिनूर का हीरा है!

एक बार ऐसी बात हुई कि खेत में किसान जाता था, रास्ते में। तो रास्ते में तीन रत्न अंदर पड़े थे, रास्ते में। बड़े रत्न, करोड़-करोड़ की पाँच-पाँच करोड़ की कीमत (के रत्न) रास्ते में पड़े थे। तो उसको बराबर (वहीं) जहाँ टाइम आया न, वहाँ उसको विचार आया कि अँधा कैसे चलता होगा! आँख बंद करके चला। चला तो pass on (चूक) हो गया। रत्न होने पर भी आँख बंद कर दी! ये तो दृष्टांत है, ख्याल रखना। आँख बंद कर दी।

ऐसे जब आगम में निश्चय की यथार्थ बात आती है - ये आया, **जीवद्रव्यके स्वभावको छोड़कर,** वो कोहिनूर के (हीरे को) - ये तो निश्चय की बात है, छोड़ देता है, वो छोड़कर आगे चलता है। इसमें लिखा है, इसमें लिखा है, निमित्त है, निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, हेतु है, सब लिखा है - वहाँ नजर जाती है; मगर 'हेतु नहीं है' वहाँ नजर जाती नहीं है। आहाहा!

**जीवद्रव्यके स्वभावको**... ये नवतत्त्व की उत्पत्ति का कारण फरमाते हैं। नवतत्त्व की उत्पत्ति तो होती है मगर नवतत्त्व के परिणाम की उत्पत्ति में कारण भगवान आत्मा नहीं है। तो अपने **जीवद्रव्यके स्वभावको छोड़कर, स्वयं और पर जिनके कारण हैं** क्या कहा? ये भगवान त्रिकाल ज्ञानानंद परमात्मा अंदर विराजमान है चैतन्यमूर्ति जगमगाती-ज्योति, वो परिणाम का कारण नहीं है। तो कार्य तो होता है, तो उसका कारण कौन है? कि **स्वयं** यानि पर्याय का कारण पर्याय है, त्रिकाली द्रव्य (कारण) है नहीं। इसमें लिखा है सब। आहाहा! मगर निश्चयनय की आँख खोले तो-तो कोहिनूर नजर में आ जाये और निर्धन रहवे (नहीं)। रत्न हाथ में आवे तो निर्धन रहवे कोई? आहाहा!

दूसरे दिन वो तीन रत्न बेचे। दूसरे दिन कहे 'मैं रतनलाल जी से भी बड़ा साहूकार हूँ'। कहे कि नहीं (अगर) तीन रत्न का पैसा आ जाये तो? आहाहा! ऐसा! रतनलाल जी का तो ये दृष्टांत है। भगवान ये काल आया है, काल पक गया है तेरा। कुंदकुंद की वाणी कान पर आती है, तो उस जीव की योग्यता

पक गयी है। कम ज्यादा की बात गौण करना। समझे? आहाहा!

तो ये **जीवद्रव्यके स्वभावको छोड़कर, स्वयं और पर जिनके कारण हैं**। स्वयं यानि पर्याय; पर यानि अजीव, निमित्त, पुद्गल। आहाहा! कारण-कार्य, निमित्त-नैमित्तिक संबंध में कार्य-कारण पर के साथ होता है; स्व के साथ होता नहीं। **ऐसी एक द्रव्यकी पर्यायोंके रूपमें अनुभव करने पर भूतार्थ हैं और सर्व कालमें अस्खलित** - दूसरा कोहिनूर का हीरा आया। आहाहा! कि कोहिनूर के हीरे इसमें हैं! उस कोहिनूर के हीरे को बतानेवाली वाणी वो भी कोहिनूर का हीरा है। हीरा तो इधर (आत्मा में) है चैतन्य-रत्न।

**अनुभव करने पर भूतार्थ हैं और सर्व कालमें अस्खलित** तीनों काल अपने स्वभाव को आत्मा छोड़ता (नहीं है)। **अस्खलित** है, स्खलना आती नहीं है। स्खलना पर्याय में आती है। वो पर्याय भी परद्रव्य है; परद्रव्य में आती है, मेरे में (वो) आती (नहीं है)। आहाहा!

तीन-तीन आचार्य भगवान ने परिणाम को परद्रव्य कहा है, परभाव कहा है, विभाव कहा है, पुद्गल का परिणाम कहा है, अजीव कहा है - वो तो कहा है। मगर उनको जब बहुत करुणा आती है, बहुत करुणा (कि) इतनी-इतनी बात मैं कहता हूँ और ममत्व छूटता नहीं है, तेरा परिणाम के प्रति ममत्व नहीं छूटता है! बहुत करुणा आ गई, बहुत करुणा आ गयी है। आहाहा! जीव की परिणति देखकर ज्ञानी को करुणा आती है, किसी पर द्वेष नहीं आता है। तो आचार्य भगवान ने लिख दिया कि नवतत्त्व परद्रव्य हैं, जा! आहाहा! परद्रव्य होने से (वो) तेरा कार्य (और) उनका तू कर्ता और (वो तेरा) कर्म - ऐसा है नहीं। ... ऐसा तो नहीं है। जैसे परद्रव्य के लक्ष से आत्मज्ञान नहीं होता है; ऐसे परिणाम (भी) परद्रव्य है, उसको ज्ञेय बनाता है तहाँ तक आत्मज्ञान प्रगट (नहीं होता है) क्योंकि वो परद्रव्य है। सुनना जरा शांति से! आहाहा!

जैसे परपदार्थ को जानते **भी सुख नहीं, ज्ञान भी नहीं** है; ऐसा कलश-टीका (कलश १) में पंडित जी ने लिखा है। परद्रव्य है और जीव, संसारी जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, और काल, सब परद्रव्य हैं। उनमें ज्ञान नहीं है, उनमें सुख नहीं है। उसको जाननेवाले को ज्ञान नहीं होता है और सुख भी नहीं होता है; और इधर भगवान आत्मा में ज्ञान भी है और सुख भी है। ज्ञान होगा और होता है - ऐसा नहीं। ज्ञान है, है और है और सुख है, है और है। उसको जाननेवाले को ज्ञान और सुख प्रगट हो जाता है।

ऐसे वहाँ छहद्रव्य को परद्रव्य कहा (है)। छहद्रव्य को परद्रव्य कहा और अध्यात्म की पराकाष्ठा में जब करुणा आती है आचार्य भगवान को हमारे ऊपर, तब (कहते हैं कि) नवतत्त्व का जो भेद, पर्याय का (जो) भेद है वो सब परद्रव्य है। जैसे इस परद्रव्य को देखने से परद्रव्य का ज्ञान नहीं होता है और आत्मा का ज्ञान (भी) नहीं होता है। सुनना जरा! कि परद्रव्य का तो ज्ञान होता है? कि नहीं, परद्रव्य का ज्ञान नहीं होता है। सुन! आहाहा!

ऐसे परिणाम प्रगट होता है वो कर्ता का कर्म है - ऐसा माननेवाले को अंतर्दृष्टि नहीं होती है। वो तो ठीक! मगर परिणाम ज्ञेय तो है न? परिणाम जानना तो चाहिए न? परिणाम अवस्तु तो नहीं है न? ज्ञान का ज्ञेय तो है न? ऐसे अपने गुरुदेव ने प्रवचन-रत्नाकर के पहला भाग, १४६ पेज पर लिखा है

(कि) परिणाम तो है न? परिणाम तो जानना चाहिए न? परिणाम अवस्तु तो नहीं है न? आहाहा! ऐसा कर-करके मिथ्यात्व पुष्ट कर लेता है। परद्रव्य पर उसका लक्ष है। चिंतवन में बैठा है, चिंतवन में, आँख तो बंद है, शास्त्र पढ़ता नहीं है, ऐसे-ऐसे (बाहर) देखता नहीं है, चिंतवन में (वो) पर्याय का चिंतवन करता है कि पर्याय सत्-अहेतुक है, कर्ता का कर्म तो नहीं है मगर ज्ञान का ज्ञेय है। क्या कहा?

मुमुक्षु: ज्ञान का ज्ञेय है।

पू. लालचंदभाई: जानना तो चाहिए, परिणाम को जानने से विवेक आता है, दोष टल जाता है। लाइन-फेर (गलत दिशा) है। आहाहा!

मुमुक्षु: आज तो हरख भोजन है।

पू. लालचंदभाई: परद्रव्य को जानने से आत्मज्ञान तीनकाल में होगा नहीं! छोड़ दे उसको जानना। है - ऐसा स्वीकार हो गया मगर वो जानने लायक नहीं है। परद्रव्य (को) जानने से आत्मज्ञान नहीं होता है। परद्रव्य, पर्याय परद्रव्य (है)। आहाहा! वो परद्रव्य है, उसको जानने से ... चिंतवन में बैठा है, चिंतवन में तो कोई - बाहर पाँच इंद्रिय का विषय तो बंद हो गया, मन का विषय चलता है, मन में पर्याय (को) खड़ा करता है और पर्याय को ज्ञेय बनाता है तो ज्ञायकदेव ज्ञेय बनता नहीं है! उसका ज्ञेय फिरता ही नहीं है। ज्ञेय फिरने से आत्मा, ज्ञान ज्ञायक ज्ञेय बन जाता है। ध्येय भी ज्ञायक और ज्ञेय भी ज्ञायक है। आहाहा!

तो आचार्य भगवान फरमाते हैं इधर, आहाहा! पूर्णाहुति का दिन है न आज तो। आहाहा! मोक्ष कल्याणक है आज। **ऐसी एक द्रव्यकी पर्यायोंके रूपमें अनुभव करने पर भूतार्थ हैं और सर्व कालमें अस्खलित एक** द्रव्य सामान्य स्वभाव को देखते, सामान्य की ओर झुककर जब देखते हैं तब नवतत्त्व होने पर भी लक्ष छूट गया, इसलिए दिखाई देता (नहीं है)। अभेद की दृष्टि में भेद दिखाई नहीं देता है, इसलिए अभूतार्थ है; होने पर भी नहीं है, होने पर भी नहीं है। आहाहा! क्योंकि वहाँ से लक्ष छूट गया, आत्मा सामान्य पर लक्ष आ गया, निर्विकल्पध्यान में आ गया तो निर्विकल्पध्यान के काल में पर्याय का लक्ष नहीं रहता है। आहाहा! पर का लक्ष तो छूट जाये, पर्याय का लक्ष भी छूट जाता है। लक्ष छूटता है, पर्याय नहीं छूटती है। आहाहा!

**सर्व कालमें अस्खलित एक जीवद्रव्यके स्वभावके** सन्मुख - **समीप जाकर** देखने से **अनुभव करने पर वे** तब, तब वो, आहाहा! ये परिणाम दिखाई देता नहीं है इसलिए अनुभव के काल में अभेद में भेद दिखाई देता (नहीं है)। भेद होने पर भी दिखाई नहीं देता है। छहद्रव्य होने पर भी दिखाई नहीं देते हैं क्योंकि वहाँ लक्ष नहीं है न, लक्ष छूट गया (है) न। आहाहा! लड्डू खाता है तब लड्डू पर लक्ष है तो सब्जी पर लक्ष होता नहीं है - ऐसी बात है। आहाहा! यह अमृत का लड्डू है। ओहोहो!

आहाहा! **अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं। इसलिये इन नवों तत्त्वोंमें** अब total (कुल) देते हैं। ये नौ तत्त्वों में, नौ तत्त्वों के मध्य में **भूतार्थनयसे एक जीव ही प्रकाशमान है।** 'ज' ('ही' शब्द) लगाया, सम्यक् एकांत - 'ज' (ही)। आहाहा! एक आत्मा दिखाई देता है और परिणाम दिखाई देता नहीं है - इसका नाम अस्ति-नास्ति अनेकांत है। आहाहा! भाई! द्रव्य और पर्याय दो दिखें तो अनेकांत होता है -

वो प्रमाण की बात है, बाद की बात है, बाद की बात है, बाद की बात अभी गौण कर दे। अपना प्रयोजन सिद्ध कर ले - प्रमाणज्ञान हो जाएगा, द्रव्य-पर्याय का ज्ञान हो जाएगा, लोकालोक का ज्ञान - लोकालोक संबंधी का ज्ञान होगा, उसमें निमित्त है तो लोकालोक का जानना आ गया। आहाहा!

निर्जरा अधिकार में एक बार आचार्य भगवान फरमाते हैं ... कल आहार-दान था न, भगवान का। तो वो आहार दिखता है कि क्या दिखता है, आहार-दान के समय? आचार्य भगवान ने कलम चलाई, आचार्य भगवान ने कलम चलाई निर्जरा अधिकार में कि दर्पण में आए हुये प्रतिबिंब के समान आहार को जानता है। Direct (प्रत्यक्ष) नहीं जानता है, indirect (अप्रत्यक्ष) जानता है। क्या है ये बात? आहाहा! ये संस्कृत का शब्द है जयसेन आचार्य भगवान की टीका में। आहाहा! कि ज्ञानी आहार के समय आहार को जानता है कि किसको जानता है? कि दर्पण में आए हुए प्रतिबिंब के समान जानता है। बिम्ब को नहीं जानता है, प्रतिबिंब को जानता है; प्रतिबिंब तो दर्पण की स्वच्छता है। ऐसे ज्ञान में जो पदार्थ झलकते हैं तो वो पदार्थ को नहीं जानता है ज्ञान। आहाहा! पदार्थ जिसमें झलकता है, प्रतिभासित होता है, ऐसी ज्ञान की पर्याय को जानता है कि जिस ज्ञान की पर्याय में आत्मा भी जानने में आ रहा है; ऐसा अंदर का अभेद स्वपरप्रकाशक है।

**स्वपर प्रकासक सकति हमारी ।**
**तातैं वचन भेद भ्रम भारी** ॥ (गाथा ४६, नाटक समयसार, साध्य-साधक द्वार)
**स्वपर प्रकासक सकति हमारी ।**
**तातैं वचन भेद भ्रम भारी ॥**

वचन भेद है - ये स्व को जानता है और पर को जानता है। अरे! उसका सामर्थ्य ही स्वपरप्रकाशक (है), एक समय की पर्याय अभेद है; दो भाग नहीं हैं - ये स्व को जानता है और ये पर को जानता है, ऐसा है नहीं। एक अखंड ज्ञान की पर्याय में स्वपरप्रकाशक सामर्थ्य है। तो ज्ञान की पर्याय को ही जानता है, पर को जानता नहीं है। पर को जानता (है, ऐसा) कहना, निमित्त देखकर, वो निमित्त का कथन है, व्यवहार का कथन (है)। मगर पहले निश्चय समझ ले, निश्चय अच्छी तरह से समझे बिना व्यवहार का ज्ञान भी कभी होता नहीं है।

तो इधर क्या कहते हैं? **नवों तत्त्वोंमें भूतार्थनयसे एक जीव ही** जीव 'ही', **जीव ही प्रकाशमान है**, और अजीव प्रकाशमान नहीं है। नवतत्त्व अजीव हैं - अजीव का विस्तार है, जीव का विस्तार नहीं होता है। जरा शांति से सुनना! आहाहा! अजीव यानि ये जीव नहीं है - ऐसा लेना। जीव ऐसा (घड़ी जैसा) ऐसा अजीव हो गया, ऐसा नहीं है। कथन का मर्म समझना चाहिए। शब्द में चिपके तो काम ना आवे। शब्द को चिपको तो (ऐसा कहे कि) 'देखो! यह जो कथन किया (ये) गलत है' (ऐसा) कहे, 'अजीव, पर्याय को अजीव कहा'। भाई! किस अपेक्षा से अजीव कहा (है, वो) अपेक्षा समझना चाहिए।

तहाँ तक एकपने प्रकाशमान तो, **एक जीव ही प्रकाशमान है।** आहाहा! सम्यक्एकांत किया। एक शुद्धात्मा अंतर्दृष्टि से निर्विकल्पध्यान में ज्ञानी धर्मात्मा, मुनिराज, आहाहा! नेमिनाथ भगवान अंदर में गए। नेमिनाथ भगवान की वाणी में आया कि मैं निर्विकल्पध्यान में जब जाता हूँ तब एक शुद्धात्मा ही प्रकाशमान होता है। परिणाम होने पर भी परिणाम का लक्ष नहीं है इसलिए परिणाम का प्रतिभास होने

पर भी परिणाम उपयोगात्मक नहीं होता है, ज्ञायकभाव उपयोगात्मक हो जाता है! आहाहा! सूक्ष्म बात है! आहाहा! परद्रव्य है। परद्रव्य में घबराहट हो जाती है सबको। कि परद्रव्य (है) परिणाम, नवतत्त्व? हाँ! आहाहा! धर्मपिता ने कहा है, सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आयी है वो बात। अद्धर की बात (नहीं है)। अद्धर से लिखी हुई चीज नहीं है। ज्ञानी अद्धर से नहीं लिखते हैं।

**एकत्वरूपसे प्रकाशित होता हुआ, शुद्धनयरूपसे अनुभव किया जाता है। और जो यह अनुभूति है सो आत्मख्याति (आत्माकी पहचान) ही है, और जो आत्मख्याति है सो सम्यग्दर्शन ही है। इसप्रकार यह सर्व कथन निर्दोष है-...**

अभी टाइम तो हो गया है, दो मिनिट की एक बात मेरे को कहना है, मैं कह देता हूँ।

जैसे एक पद्मनंदी आचार्य भगवान का शास्त्र है - पद्मनंदी, वनशास्त्र। हाँ!

मुमुक्षु: पद्मनंदी-पंचविंशतिका।

पू. लालचंदभाई: हाँ! ऐसा एक शास्त्र है, वनशास्त्र। उसमें एक बार आचार्य भगवान ... वो तो बाल-ब्रह्मचारी थे। एक बार ब्रह्मचर्य का अधिकार कहते-कहते-कहते, आहाहा! जवान बैठे थे सब। आखिर में (आचार्य ने) कहा कि मेरे ब्रह्मचर्य की बात सुनकर कभी युवाओं को दुःख लगे तो मेरे को माफ करना, मेरे पास (से) दूसरी आशा रखना नहीं। मैं तो ब्रह्मचर्य की बात - निश्चय से भी ब्रह्मचर्य की बात करूँगा और व्यवहार से भी ब्रह्मचर्य की ही बात करूँगा। कल प्रतिज्ञा ली न, डॉक्टर साहब ने। आहाहा! निश्चय ब्रह्मचर्य और व्यवहार ब्रह्मचर्य, दूसरी बात की हमसे आशा रखना नहीं। ऐसे क्षमा माँग ली।

आचार्य भगवान ने क्षमा माँग ली तो हमारी तो क्या बात करूँ? कल पौने घंटे में मैंने जो शास्त्र का प्रमाण देकर जो बात सुबह में कही थी, वह सेंट-परसेंट सौ प्रतिशत सत्य थी और आगम का आधार देकर कही थी। मगर सत्य बात कहने पर भी मेरे निमित्त से किसी को दुख लगा हो तो मैं सबसे क्षमा माँगता हूँ।

मुमुक्षु: कहान गुरुदेव की जय हो!